दलित संचेतना का वर्तमान परिप्रेक्ष्य (जाति आधारित समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

डॉ0 राजपाल सिंह*, डॉ0 रजनीश कौशिक**
*&**पीएच0डी0, *साहू जैन पी0जी0 कॉलेज, नजीबाबाद (बिजनौर)*

सारांश

भारतीय सामाजिक संस्थाओं में जाति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और प्रत्येक जाति अपने में एक पूर्ण इकाई है। भारत में अनेक प्रजातियों के अस्तित्व में होने के परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था सुदृढ़ होती गई हैं। जाति एवं वर्ग समाज में संस्तरित होकर सामाजिक स्थिति की आधारशिला बनते गये हैं। जाति व्यवस्था में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को देखकर प्रतीत होता है कि भारत में औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण के प्रभाव के कारण जाति संरचना में परिवर्तन हुये हैं। अनुसूचित जातियों के संरक्षण के लिये भारतीय संविधान निर्माताओं ने विशेष प्रावधान किये हैं।

आजादी के पश्चात् यद्यपि दलित जातियों में हजारों परिवार निम्न स्थिति से उच्च स्थिति तक आ गये हैं फिर भी उनको अपेक्षित सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिल पायी है। सामाजिक परिवर्तन की एक स्पष्ट और तीव्र आकांक्षा दलित जातियों में जाग्रत हो चली है। यह भावना ग्रामीण क्षेत्रों में भी क्रांति का आह्वान करने लगी है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हालांकि आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के पास इतनी शक्ति नहीं है कि वे जाति को नष्ट कर सकें, परन्तु इसकी जड़ों पर कुठाराघात करके यदि नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर जोर दिया जाये तो हम समानता के सामाजिक मूल्य एवं मानवीयता के व्यवहार को आचरण में ला सकते हैं।

मूल शब्द : *दलित, अनुसूचित जाति, संचेतना (जाग्रति), वर्तमान परिप्रेक्ष्य।*

शोध पत्र का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है:

डॉ0 राजपाल सिंह*, डॉ0 रजनीश कौशिक **

दलित संचेतना का वर्तमान परिप्रेक्ष्य (जाति आधारित समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

शोध मंथन, जून 2018,
पेज सं0 134–140

Article No. 20
http://anubooks.com
?page_id=581

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने अनुसूचित जातियों के संरक्षण के लिए अनेकानेक प्रावधान किए हैं। स्वतंत्रोपरांत यद्यपि इन अनुसूचित एवं दलित जातियों के अंतर्गत हजारों परिवार निम्न स्थिति से उच्च स्थिति तक आ गये हैं तथापि उनको अपेक्षित सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिल सकी है। सामाजिक परिवर्तन की एक स्पष्ट और तीव्र आकांक्षा दलित जातियों में जाग्रत हो चली है जो ग्रामीण क्षेत्रों में भी क्रांति का आह्वान करने लगी है। प्रस्तुत लेख दलित संचेतना के वर्तमान परिप्रेक्ष्य पर प्रकाश डालता है।

भारतीय सामाजिक संस्थाओं में जाति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भारतीय उप–महाद्वीप जातियों का महाजाल है जिसमें एशिया की अनेक नस्लें और जन भटकते हुए आये और यहीं बस गये। यहाँ समाज का अपने ही ढंग से विकास हुआ। जाति प्रथा के कारण एक ही सामाजिक व्यवस्था में रहते हुये जैविक एवं सामाजिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति हुई। इसके अलावा यह व्यवस्था ऐतिहासिक दृष्टि से काफी आत्मसात कर लेने की क्षमता रखती है। किसी भी आगन्तुक समाज ने इसमें क्रांति पैदा करने में सफलता नहीं प्राप्त की है। यद्यपि यह व्यवस्था इतनी कठोर नहीं है कि कोई जाति सामाजिक सीढ़ी में ऊपर नहीं चल सकती।

प्रत्येक जाति अपने में एक पूर्ण इकाई है। कुछ बातों में अन्य जातियों से इसकी प्रथायें भिन्न होती है। कभी–कभी तो इनकी प्रथाओं में परस्पर विरोध भी मिलता है। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति में विवाह नहीं कर सकता है, किन्तु किसी सीमा तक एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति के लोगों के साथ खान–पान का सम्बन्ध रख सकता है। इस विषय में अलिखित विधान है, जिसका सभी को ज्ञान होता है, यहाँ तक कि धर्म–परिवर्तन से भी जाति व्यवस्था में कोई फर्क नहीं आता क्योंकि मुसलमान भी जो इन प्रथाओं को सिद्धान्त रूप में नहीं मानते प्रायः व्यवहार में उनका पालन करते हैं। कई जातियाँ तो ऐसी भी हैं जो मुसलमान भी हैं और हिन्दू भी। जब कोई सुधारक संगठन हिन्दू धर्म से अलग होता है और जाति प्रथा को तोड़ देता है तो प्रायः उसकी एक नई जाति बन जाती है। भारतीय यहूदियों और ईसाइयों में भी जातियाँ या उससे मिलते–जुलते रूप हैं।

भारत में लगभग 6700 जातियाँ हैं। इन सबका विवेचन करने के लिये एक विश्वकोष की रचना की आवश्यकता होगी। कुछ जातियाँ तो कबीलों और नस्लों से बनी हैं। कुछ व्यवसायिक हैं कुछ जातियाँ क्षेत्रीय हैं, कुछ धार्मिक आदि–आदि। ऐसे बन्धन जिन्होंने शुरु में किसी जाति के लोगों को एक किया होगा भिन्न–भिन्न जातियों के लिये प्रायः भिन्न थे। किन्तु ऐसा माना जाता है कि समूचे देश का समाज इन विभिन्न इकाइयों के एक अवयव के रूप में संगठन से बना है।

भारत वर्ष में अनेक प्रजातियों के अस्तित्व में होने के परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था की उत्पत्ति हुई। रिजले तथा उनके अनुयायियों का कथन है कि भारत में विभिन्न प्रजातियों के मिश्रण और अनुलोम विवाह के फलस्वरूप जाति व्यवस्था की उत्पत्ति हुई। रिजले ने अपने सिद्धांत का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि आर्यों ने अपने आपको ऊँचा सिद्ध करने के प्रयास में अन्य प्रजातियों को जातियों में परिवर्तित किया। रिजले के इस सिद्धांत का समर्थन मजूमदार, घुरिये, दत्ता, राय आदि समाजशास्त्रियों ने किया है। परन्तु यह सिद्धांत सत्य है तो क्या कारण है कि विश्व के अन्य देशों में विभिन्न प्रजातियों के होने पर भी जाति व्यवस्था की उत्पत्ति नहीं हुयी।

डॉ0 राजपाल सिंह, डॉ0 रजनीश कौशिक***

जाति तथा वर्ग समाज में संस्तरण के दो प्रमुख रूप हैं। जाति का आधार जन्म है तो वर्ग का आधार शिक्षा, व्यवसाय, जीवन स्तर, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष आदि। वर्ग का निर्धारण व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के आधार पर किया जाता है। एक समान सामाजिक स्थिति वाले व्यक्तियों के समूह को एक वर्ग माना जाता है। एक वर्ग से दूसरे वर्ग में आना–जाना सम्भव है, जबकि जाति में ऐसा नहीं है। जन्म के अतिरिक्त किसी भी आधार पर बने एक समान मानव समूह को वर्ग कहते हैं।

जाति व्यवस्था में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को देखकर ऐसा लगता है कि भारत में जातियाँ वर्ग का रूप ले रही है। औद्योगीकीकरण एवं नगरीकरण के प्रभाव के कारण जाति संरचना में परिवर्तन हुए हैं। व्यवसाय एवं जाति के आर्थिक आधारों में परिवर्तन हुआ है। जाति के भीतर ही वर्ग पैदा होने लगे हैं और विभिन्न जातियों ने अपना जातीय संगठन बनाकर वर्ग की विशेषतायें ग्रहण की है। जैसे– शहरों में हरिजनों की अपनी ट्रेड यूनियन जो उनके हितों के लिये उसी प्रकार संघर्ष करती है जैसे मजदूर वर्ग मालिक वर्ग से। इन संगठनों के निर्माण का आधार जाति नहीं बल्कि समान व्यवसाय है। एक व्यवसाय में लगे विभिन्न जातियों के लोगों में वर्ग चेतना पैदा हुई और वे अपनी मांगों को मनवाने के लिये एक झण्डे, मंच एवं राजनीतिक दल के अन्तर्गत संगठित होते हैं। इस प्रकार जाति जो कि पहले एक बन्द व्यवस्था थी, में अब वर्ग की भाँति खुलापन आता जा रहा है। उद्योगों में ही नहीं अपितु कृषि में भी यही स्थिति है। औद्योगीकीकरण के कारण ग्रामीण व्यवसायों के नष्ट हो जाने से ग्रामीण दस्तकारी जातियाँ अपने व्यवसाय को छोड़कर कृषि कार्य करने लगी हैं और वे भूमिहीन कृषक के रूप में सर्वहारा वर्ग में बदल रही हैं।

आज एक ओर विभिन्न जातियों के बीच सांस्कृतिक अन्तर कम हुआ है अर्थात् विवाह, खान–पान एवं सामाजिक सहवास के नियमों में शिथिलता आयी है, किन्तु दूसरी ओर उनके बीच पारस्परिक प्रतिस्पर्धा एवं संघर्ष में दिनों–दिन वृद्धि होती जा रही है। जाति वर्ग के रूप में परिवर्तित होने की प्रक्रिया में है।

अनुसूचित जातियों की संवैधानिक सुविधायें

अनुसूचित जातियों के संरक्षण के लिये भारतीय संविधान निर्माताओं ने विशेष प्रावधान किये हैं। संविधान निर्माताओं के विचारों के अनुरूप सामाजिक न्याय के लक्ष्य को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से संवैधानिक प्रावधानों के साथ–साथ कुछ विशेष कानूनी उपाय भी किये गये हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में राजनीतिक और आर्थिक न्याय के साथ–साथ सामाजिक न्याय का आदर्श प्रतिपादित किया गया है, उससे ही ये प्रावधान और कानून प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

1955 में संसद ने अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम बनाया। इस कानून की धारा 3 और 4 के तहत अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को धार्मिक या सामाजिक रूप से अयोग्य करार देने के लिये दण्ड का प्रावधान किया गया है। धारा 5 में आम जनता या उसके किसी भी वर्ग के लाभ के लिये चलाये जा रहे संस्थानों जैसे– अस्पताल, शिक्षण संस्थान आदि ने अगर अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को दाखिला देने से मना किया है तो यह कृत्य दण्डनीय होगा। इसी तरह धारा 6 में अस्पृश्यता के आधार पर किसी व्यक्ति को वस्तु बेचने से मना करने या उसे सेवा

मुहैया न करना भी दण्डनीय होगा। धारा 7 में व्यवस्था की गयी है कि अस्पृश्यता को समाप्त करने वाले संवैधानिक अनुच्छेद 17 के तहत मिलने वाले अधिकारों के प्रयोग से अगर किसी को वंचित किया जाता है तो यह दण्डनीय अपराध होगा। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सदस्यों पर अत्याचार होने से रोकना है।

संविधान के अनुच्छेद 335 में कहा गया है कि संघ या राज्य के मामलों में सम्बन्धित सेवाओं और पदों के लिये नियुक्ति करते समय अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों पर विचार प्रशासन की कार्यकुशलता के निर्वाह के अनुरूप किया जाना चाहिए।

अनुसूचित जनजातियों की वर्तमान स्थिति

भारतीय सामाजिक संरचना स्तरीकरण एवं सामाजिक विभेदीकरण पर आधारित है। इस प्रकार के वर्ग जो समाज की निगाह में आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सम्पन्न और उच्च समझे जाते हैं, उनको उच्च वर्ग भी कहा जाता है। इसके विपरीत वे जातियाँ जिनकी सामाजिक प्रतिष्ठा, मान मर्यादा और स्तर नीचा समझा जाता है वे पिछड़ा वर्ग कहलाते हैं। अनुसूचित जातियों या भारतीय समाज की दलित जातियों की शताब्दियों से शोषण और उपेक्षा की गयी है। इनका मुख्य परिचायक चिन्ह अस्पृश्यता है। इन वर्गों के सदस्यों को छुआछूत के कलंक का एक लम्बे समय से शिकार होना पड़ा है। सामाजिक अन्याय, भेदभाव और आर्थिक उपेक्षा इन जातियों की मुख्य समस्यायें बन गई हैं।

सन् 1935 में भारत सरकार द्वारा प्रथम बार इन जातियों की सूची जारी की गयी। बाद में सन् 1950 में भारतीय संविधान में एक सूची को शामिल किया गया। वे जातियाँ जिन्हें संविधान के अन्तर्गत सूचीबद्ध किया गया उन्हें अनुसूचित जाति शब्द से सम्बोधित किया गया उन्हें अनुसूचित जाति शब्द से सम्बोधित किया गया। महात्मा गाँधी ने उन्हें हरिजन शब्द से सम्बोधित किया था। स्वतंत्रता के पश्चात् भी समानता और सम्मान के लिये इस वर्ग ने अपना संघर्ष जारी रखा और आक्रोशित होकर अपने को 'दलित' शब्द से सम्बोधित किया जाना पसंद किया।

अनुसूचित जाति की जनसंख्या सम्पूर्ण भारतीय जनसंख्या की 15.7 प्रतिशत है। हमारी जनसंख्या का यह बड़ा भाग विभिन्न ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से पिछड़े एवं अशिक्षित है। स्वाधीनता के पाँच दशक बाद भी और संविधान में प्रदत्त सुविधाओं और सुरक्षा के प्रावधानों के होते हुए भी दलितों की दशा अच्छे जीवन प्रतिमानों से काफी दूर हैं।

आजादी के पश्चात् यद्यपि दलित जातियों के हजारों परिवार निम्न वर्ग से मध्यम स्तर तक ही नहीं बल्कि उच्च स्तर तक आ गये हैं फिर भी उनको वह सामाजिक प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई है जिसकी उन्हें आकांक्षा और अपेक्षा है। विधानसभा और संसद सदस्यों के रूप में राजनीतिक ताकत हासिल करने के साथ ही प्रशासनिक स्तर पर भी दलितों ने अपनी उपस्थिति का अहसास करवाया है। दलित जातियों में यह बड़ा परिवर्तन उनकी शिक्षा और आर्थिक स्तर में वृद्धि के कारण नगरों में तो दृष्टिगोचर होता है। किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में जाति के अंकुर पूर्ण विभीषिका के साथ आज भी विद्यमान हैं।

श्रीनिवास (1962) ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि प्रथम आम चुनावों में राजनीति पर जाति का प्रभाव था। जे0जी0 बाबू (1967–68, 1977, 1978) ने अनुसूचित जनजाति की शैक्षिक

प्रगति का अध्ययन किया और कहा कि वर्तमान कारकों के अन्तर्गत यदि इन वर्गों की प्रगति दर यही रही तो इस शताब्दी के अन्त तक भी यह वर्ग अन्य समुदायों के समकक्ष नहीं पहुँच सकेगा।

तिवारी और मिश्रा (1980) ने भारतीय बालकों में जातीय चेतना के विकास के संदर्भ में अध्ययन किया। 4 से 12 आयु वर्ग के 60 बालकों पर अध्ययन किया गया। उनके परिणाम बताते हैं कि आयु बढ़ने के साथ–साथ जातीय चेतना बढ़ती है। जातीय सदस्यता बालकों में सामाजिक अन्तःक्रिया को निर्धारित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वैंकटेश्वरलू (1981) के आन्ध्र प्रदेश के हरिजनों की वर्तमान स्थिति का अध्ययन से ज्ञात हुआ कि 1974 तक हरिजनों के विरुद्ध दाखिल फौजदारी मुकदमों की संख्या नगण्य थी। 962 मुकद्दमों में 449 केस सिर्फ अस्पृश्यता के अन्तर्गत पंजीकृत थे। अकसर सामान्य से अपराधों में हरिजनों को बन्दी बनाया गया और उनका अमानवीय उत्पीड़न किया गया। इसका कारण उनकी अशिक्षा है साथ ही साथ सरकार द्वारा उनके चतुर्मुखी विकास में की जाने वाली कमियाँ भी हैं।

शर्मा (1991) ने अनुसूचित जाति की आधुनिक अभिवृत्तियों के एक अध्ययन में पाया कि सामाजिक परिवर्तन की एक स्पष्ट और तीव्र आकांक्षा दलित जातियों में जाग्रत हो चली है। यह भावना ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा उग्र होकर सामाजिक क्रांति का आह्वान करने लगी है। सदियों से पीड़ित, शोषित एवं अवमानना सहने को मजबूर यह वर्ग अब शिक्षित होकर अपने सामाजिक अधिकारों की चर्चा करने लगा है। बढ़ते शहरीकरण, औद्योगीकीकरण और साथ ही जनसंचार माध्यमों की बहुलता ने दुनिया को छोटा कर एक इकाई में बदल दिया है। सामाजिक न्याय के आधार पर समानता के अधिकार की मांग और वैयक्तिक स्वतंत्रता की अवधारणा ने जाति व्यवस्था पर चोट की है। स्पष्ट है कि भाग्य, कर्म और पुनर्जन्म की सांस्कृतिक विरासत से जकड़ा दलित जनमानस अपनी गरीबी से भी संतुष्ट है, तभी तो सामाजिक परिवर्तन और क्रांति जैसी आधुनिक अभिवृत्तियों से उनका दूर का भी नाता नहीं है, बल्कि वह परम्परागत कुरीति और जाति प्रथा के कोढ़ के रूप में छुआछूत का समर्थन ही करता है। आर्थिक सम्पन्नता में वृद्धि के साथ ही जातिगत प्रतिबद्धता कम होती जाती है और सामाजिक परिवर्तन की अभिवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। दलित जाति का सम्पन्न वर्ग सामाजिक परिवर्तन और क्रांति की बात करता है। यह वर्ग शिक्षित भी है और इनके मन में अपने समाज को प्रगतिशील बनाने की तीव्र लालसा भी है। यही कारण है कि यह वर्ग अन्य समुदायों से दलितों के लिए अधिक उदार दृष्टिकोण की अपेक्षा करता है। अतः स्पष्ट है कि जातिविहीन समाज की ओर अग्रसर होने व आधुनिक समाज के निर्माण के लिये आवश्यक है कि समाज रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों से ऊपर उठकर शिक्षित हो और सम्पन्न भी।

राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के बाद आर्थिक स्वतंत्रता की ओर उन्मुखता का आधार सामाजिक चेतना है और लक्ष्य है विकास। जाति संस्तरण में निम्नतम् स्थान प्राप्त दलितों में व्याप्त क्षोभ और असन्तोष को सामाजिक परिवर्तन एवं क्रांति की आकांक्षा की पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिये। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में जिसमें शिक्षा, व्यवसाय, अर्थ राजनीति सम्मिलित है, जाति प्रथा प्रभाव डालती है।

भारत में जाति विहीन समाज की स्थापना की सम्भावना

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई। जाति, रंग एवं लिंग पर आधारित भेदभाव एवं अस्पृश्यता को कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया। प्रजातंत्र की स्थापना की गई जिसमें देश के सभी नागरिकों को समान मौलिक अधिकार प्रदान किये गये। खान–पान व्यवसाय, संस्तरण और विवाह के नियमों में शिथिलता आई है। अब व्यक्ति का मूल्यांकन उसके जाति के आधार पर नहीं वरन् उसके गुणों के आधार पर होने लगा है। जाति एवं विवाह से सम्बन्धित कानूनों ने जाति प्रथा की जड़ों पर प्रहार किया है। इन सब कारणों से प्रगतिवादी लेखकों एवं राजनीतिज्ञों ने कई बार जाति के समाप्त होने एवं भारत में जाति विहीन समाज की स्थापना की बात कही है। शर्मा (1191) का मत है कि जाति में समय के साथ अनुकूलन करने एवं समुत्थान की शक्ति निहित है जो जाति व्यवस्था के समाप्त होने के झूठे भय को अप्रमाणित सिद्ध करती है।

घुरिये एवं श्रीनिवास का मत है– जहाँ एक ओर अंग्रेजी शासन काल में होने वाले परिवर्तनों ने जाति प्रथा के बन्धन ढीले किये हैं वहीं उन्होंने जाति प्रथा को प्रोत्साहित भी किया है। अछूतोद्धार आन्दोलन ने जाति की जड़ों को काटने में सहयोग दिया, किन्तु जातीय संगठनों के निर्माण ने जाति को सुदृढ़ बनाया है।

सामाजिक प्रगति में सबसे बड़ी दो बाधायें हैं– (1) समानता की मारीचिका। (2) अशिक्षा से उपजा मानसिक निठल्लापन। भारतीय समाज सिद्धांत में तो समानता पर बल देता है। लेकिन व्यवहार में असमानता अपनी सम्पूर्ण प्रबलता के साथ विद्यमान है। जातिगत एवं सामाजिक असमानता के तीन कारण खोजे गये हैं–

(1) कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास। (2) अपनी से ऊँची जाति के लोगों को सम्मान देना और अपनी से नीची जाति को हेय समझना। (3) शिक्षा व्यवसाय एवं जीवन शैली की असमानतायें।

सम्पूर्ण भारतीय समाज विशेषतः दलित जातियाँ वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन चाहती है। ग्रामीण अंचल का दलित भी अब जाग उठा है। दलित वर्ग का सम्पन्न तबका जाति विहीन समाज का पक्षधर है (शर्मा 1991)।

यह सत्य है कि भारत के समकालीन जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं, तथापि जाति अब भी हमारे बीच है। एक शताब्दी से भी ज्यादा समय से विविध सुधारवादी प्रयासों का शुद्ध परिणाम यह है कि जातीय नियमों को तोड़ने वालों की अब निन्दा नहीं की जा सकती।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के पास समग्र रूप से इतनी शक्ति नहीं है कि ये जाति को नष्ट कर सकें। जाति एक सामाजिक संस्था है जो व्यक्ति की सामाजिक सुरक्षा की भावना को परितुष्टि प्रदान करती है जिसकी आवश्यकता एक व्यक्ति को अपने जीवन के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिये पड़ती है, पर इसकी परम्परागत जड़ों पर चोट जारी रखकर नैतिक और मानवीय मूल्यों पर जोर दिया जाना चाहिये। जब हम जाति विहीन समाज की बात करते हैं तो इसका सीधा मतलब समानता के सामाजिक मूल्य को आचरण में लाने के साथ ही मानवीयता की स्वीकारोक्ति है।

संदर्भ

1. घुरिये, जी0एस0, ''कास्ट, क्लास एण्ड आकूपेशन'', पापुलर, बम्बई, 1961

2. मजूमदार, डी0एन0, ''रेसिस एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया'', एशिया, बम्बई, 1961
3. दत्ता, एन0के0, ''ओरिजन एण्ड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इण्डिया'', कलकत्ता, 1931
4. रिजले, एच0एच0, ''द पीपुल ऑफ इण्डिया'', लन्दन, 1915
5. मिश्रा, ए0एम0 एण्ड तिवारी एन0, ''इंटरकास्ट डिफरेन्सिस इन फर्स्ट्रेशन अमंग गर्ल्स ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट एण्ड नान–शिड्यूल्ड कास्ट'', *जर्नल ऑफ इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल रिसर्च*, 1980 (41), **13–15**
6. बाबू जे0जी0, ''एजुकेशनल प्रोग्रेस ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट एण्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्स'', ई0पी0ए0 बुलेटिन, 1980 3(3), **30–39**
7. शर्मा, एस0सी0, ''द इफैक्ट ऑफ सोशियो इकानमिक स्टेट्स ऑन द मार्डनिटी एटीट्यूड्स ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट यूथ'', *इण्डियन साइकालाजीकल रिव्यू*, 1991, 37(7–8), **23–27**
8. शर्मा, एस0सी0, ''नीड पैटर्न ऑफ ट्राइबल एण्ड नान–ट्राइबल यूथ'', आगरा साइकालाजीकल रिसर्च सेल, आगरा, 1991
9. श्रीनिवास, एम0एन0, ''सोशल चेंज इन मॉडर्न इण्डिया'', यूनिवर्सिटी ऑफ कैलीफोर्निया प्रेस, 1966
10. वैंकटेश्वरल, डी0, *''एट्रोसिटीज ऑन हरिजन्स इन आन्ध्र प्रदेश : एन अनालिसिस जर्नल ऑफ क्रिमिनोलॉजी''*, 1981, 9(2), **14–15**